THE ECONOMIC TIMES

Date:03-07-23

We Can Now Bank On Our Banks

Repricing credit is the big challenge.

ET Editorials

GoI can take credit for the health of banks after a decadelong cleaning up of bad loans. Parallelly, Indian companies have shed their bloated debt and are now primed for capital expansion on signal from consumption demand. Sticky loans at public sector banks (PSBs) are heading for their best performance in 10 years as credit demand is pushed up by households emerging from pandemic restrictions. India's relatively low household indebtedness cushions its banks against emerging stress in consumer credit. It may be premature to suppose the regulators — RBI and GoI — have won the battle. Bank resilience will be tested in newer ways with resumption of corporate borrowing. They would do well to heed finance minister Nirmala Sitharaman's suggestion about building newer strengths.

True, public sector banking is in far better shape now with weak lenders being merged with stronger ones, bigger capital buffers, improved valuation of loans and more avenues for recovery. This is a dramatic turnaround from a situation where bad loans had throttled the banking industry's ability to lend. Alongside, regulatory arbitrage with shadow banks has been closed following a debt crisis in infrastructure finance. Yet, the remedies are not complete. Privatisation of PSBs has not materialised despite their owner's stated intent. This last bit is key to improving governance by unshackling banks from government intervention in business decisions, a significant contributor to dodgy lending. The government has used healthier bank balance sheets to direct credit to micro enterprises. Delinquency rates are within tolerance although the nature of lending stretches banking resources.

The big challenge for banks, in India as elsewhere, is having to reprice credit risk as liquidity tightens following the loose monetary policy of the pandemic years. An era of cheap money may have ended for the world economy, with central banks trimming their balance sheets and governments taking an unhurried path to fiscal balance. Indian banks will have to deliver against this backdrop.

THE HINDU

Date:03-07-23

Making it count

Including disability in the NFHS-6 will serve the government well.

Editorial

The significance of data in influencing policy constructs and thereon, decisions, is non-contestable. The country takes periodic stock of various parameters just to inform welfare policies better. In context, the recent decision of the Union government to drop the disability-specific question from the National Family Health Survey (NFHS)-6 seems churlish and sends out wrong signals. After years of campaigning for the same, activists rejoiced when the government added one question on disability in the NFHS-5, and were hopeful that this would be built upon in subsequent versions of the nation-wide survey. The deletion, and reluctance to map the minutiae that will help understand their lives and needs better, leaves the question: is the government serious about its commitment to the disabled in the country, who number, as per the 2011 Census, about 2.68 crore? The Ministry of Health and Family responded that questions about disability were already asked as part of the Sample Registration Survey (SRS) 76th round, conducted between July and December 2018, and that any specific information can be tabulated from the raw data, which is also available in the public domain. It has also gone on record stating that disability data will 'not change fast'. That might be an erroneous supposition.

While gross data on disabilities will change marginally (but still be substantial given the numbers), the count of 6.1 lakh sample households that the NFHS relies on will make the data set truly representative. The elaborate questions asked by NFHS will provide valuable specifics on the lives of the disabled; something on that scale hitherto conspicuous by its absence. While the SRS does a good job with marking the prevalence and incidence of disability, education level, living arrangements, care-givers, certificate of disability, accessibility and unemployment rate, among others, the NFHS asks more comprehensive questions. It seeks answers on health and nutrition status, access to health schemes, insurance, sexual behaviour, availability of family planning, use of contraception, domestic violence, household amenities and possessions, lifestyle indicators, and access to drinking water and toilets. There is no doubt that the latter will yield better, more robust, data on the disability sector. While Health Ministry officials claim that the sole NFHS question on disability too resulted in under-reporting, that might actually be a function of training for field staff who ask the questions. The state must employ these efforts — adding questions on disabilities, training field staff, because nothing really justifies any attempt to keep a significant section out of a massive scale count of the Indian population.

दैनिक जागरण

Date:03-07-23

आवश्यक है राजद्रोह कानून

हृदयनारायण दीक्षित, (लेखक उत्तर प्रदेश विधानसभा के पूर्व अध्यक्ष हैं)

देश में इन दिनों भारतीय दंड संहिता यानी आइपीसी की धारा 124 ए से जुड़े राजद्रोह कानून पर बहस जारी है। पिछले साल मई में उच्चतम न्यायालय के दिशानिर्देशों के अनुसरण में यह कानून निलंबित है, लेकिन इसे निरस्त करने की मांग जारी है। इस संदर्भ में विधि आयोग के अध्यक्ष ऋतुराज अवस्थी ने हाल में कहा कि 'कश्मीर से केरल और पंजाब से पूर्वोत्तर तक की वर्तमान स्थिति के मद्देनजर राष्ट्रीय एकता और अखंडता को अक्षुण्ण रखने के लिए इस कानून को

बनाए रखना चाहिए।' उन्होंने कहा कि इसका दुरुपयोग रोकने के लिए पर्याप्त रक्षोपाय प्रस्तावित हैं। जैसे कि प्रारंभिक जांच इंस्पेक्टर या उससे ऊपर की रैंक के पुलिस अधिकारी द्वारा सात दिन में की जाएगी। सक्षम प्राधिकारी को ठोस प्रमाण के बाद प्राथमिकी दर्ज करने की अनुमति होगी। उन्होंने गैरकानूनी गतिविधियां रोकथाम कानून और राष्ट्रीय सुरक्षा कानूनों को राजद्रोह के अपराध के लिए अपर्याप्त बताया है। राजद्रोह कानून को औपनिवेशिक कहे जाने के मुद्दे पर भी उन्होंने कहा कि, 'केवल औपनिवेशिक विरासत होना कानून निरस्त करने का वैध आधार नहीं है। अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, जर्मनी, नीदरलैंड, नार्वे, स्पेन, आयरलैंड और मलेशिया सहित कई देशों में ऐसे कानून हैं।' कुल मिलाकर, विधि आयोग ने इस कानून को जारी रखने की सिफारिश की है। विपक्षी दल इसे आगामी लोकसभा चुनाव से जोड़ रहे हैं कि इससे सत्तारूढ़ दल के विरुद्ध असहमति और अभिव्यक्ति को दबाया जाएगा। कांग्रेस ने आरोप लगाया है कि सरकार राजद्रोह कानून सख्त बनाकर विपक्षी दलों को तंग करेगी। इस कानून का इतिहास पुराना है। इसका मसौदा वर्ष 1837 में थामस मैकाले ने तैयार किया था। 1860 में भारतीय दंड संहिता लागू हुई, लेकिन मैकाले के प्रारूप को शामिल नहीं किया गया। 1870 में एक संशोधन द्वारा उसे जोड़ा गया।

केंद्र सरकार इस कानून की पुनः जांच के निर्णय से सर्वोच्च न्यायालय को सूचित कर चुकी है। इसे औपनिवेशिक होने या दुरुपयोग के आधार पर ही निरस्त करने का कोई औचित्य नहीं है। अनेक कानूनों के दुरुपयोग की शिकायतें मिलती हैं, लेकिन इस आधार पर कानून समाप्त नहीं किए जाते। कानून की उपयोगिता और आवश्यकता ही महत्वपूर्ण होती है। नि:संदेह, कानून का दुरुपयोग रोकने के लिए आवश्यकतानुसार संशोधन करने चाहिए। इस दिशा में सम्यक विचार की आवश्यकता है। कानून में प्रयुक्त शब्दों एवं वाक्यांशों को और स्पष्ट करना चाहिए। 'देशद्रोह' को भी स्पष्ट किया जाए। इस कानून की अपनी उपयोगिता है। यह राष्ट्रविरोधी, अलगाववादी और आतंकी तत्वों से निपटने का उपकरण है। संप्रति कई राज्य सरकारें माओवादी विद्रोह से जूझ रही हैं। कहीं-कहीं विद्रोही तो सरकार का अस्तित्व भी नहीं मानते। पूर्वोत्तर अशांत है। पीएफआइ सक्रिय है। ऐसी ताकतें विधि द्वारा स्थापित सरकारों को हिंसा और अवैध तरीकों से कमजोर करने के प्रयास करती रहती हैं। राष्ट्र विरोधी ताकतें विधि निर्वाचित राजव्यवस्था पर हमले करती हैं। संविधान का अवमान होता है। उनके कृत्य राष्ट्र राज्य के विरुद्ध युद्ध है। देशद्रोह भी है। नि:संदेह, जनतंत्र में आलोचना का महत्व है। सरकारी नीतियों की आलोचना राजव्यवस्था को मजबूत करती है, लेकिन आरोप-प्रत्यारोप में वाक् संयम होना चाहिए। देशद्रोह कानून की समाप्ति से राष्ट्रीय सुरक्षा, एकता और अखंडता प्रभावित हो सकती है। अलगाववादी शक्तियां इस स्थिति का लाभ उठा सकती हैं।

लोकतंत्र भारत की जीवन श्रद्धा है। विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता संविधान के मौलिक अधिकारों का मूल तत्व है। यहां अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता असीम नहीं है। इस स्वतंत्रता पर युक्तियुक्त निर्बंधन भी हैं। अभिव्यक्ति स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार की कोई बात विद्यमान विधि के प्रवर्तन पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकती। अनुच्छेद 19 के उपखंड द्वारा प्राप्त अधिकार के प्रयोग पर भारत की प्रभुता, अखंडता, राज्य की सुरक्षा, लोक व्यवस्था शिष्टाचार या सदाचार के हितों में अथवा न्यायालय अवमान मानहानि या अपराध उद्दीपन के संबंध में युक्तियुक्त निर्बंधन हैं। इस संबंध में विधि बनाने से राज्य को रोका नहीं जा सकता। अभिव्यक्ति के अधिकार का प्रयोग करते समय लोकव्यवस्था, राष्ट्रीय सुरक्षा आदि बिंदुओं का संयम संविधान निर्माताओं ने ही निश्चित किया है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का सदुपयोग लोकतंत्र को मजबूत करता है। संविधान के अनुच्छेद 19 (1)(क) में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है तो इसी अनुच्छेद के खंड-दो में संयम और मर्यादा के स्पष्ट निर्देश हैं। इस सीमा और संयम को तोड़ने से अव्यवस्था उत्पन्न हो सकती है।

संविधान सभा में विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर बहस हो रही थी। तब मसौदा संविधान (अनुच्छेद 13) में राजद्रोह शब्द पर भी विचार हुआ। केएम मुंशी ने नए संशोधन का प्रस्ताव रखा। उन्होंने कहा कि 'इसमें दो परिवर्तनों का प्रस्ताव है। मूल खंड में राजद्रोह शब्द आया है। हमारे संशोधन में राजद्रोह शब्द को निकालने का प्रयास है। उसके स्थान पर उससे अच्छी शब्दावली रखी गई है। उद्देश्य है कि देशद्रोह शब्द निकाल दिया जाए। इसका आशय संदेहात्मक है। इसका प्रयोग विभिन्न अर्थों में होता है। राजद्रोह शब्द संसार के सभी न्यायालयों के लिए संदेह का कारण रहा है। इसकी परिभाषा बहुत साधारण है। यह परिभाषा 1868 में दी गई थी। इसके अनुसार-राजद्रोह में ऐसा सब व्यवहार सम्मिलित है, उसका शाब्दिक रूप, कार्य रूप, लिखित रूप जिसका उद्देश्य राज्य की शांति को भंग करना हो अथवा इसके लिए लोगों को प्रेरित करना हो। तब दंड संहिता की धारा 124 ए की व्यापक आलोचना प्रचलित थी। इसलिए संविधान के मसौदे से यह शब्द निकाल दिया गया।'

लोकतंत्र में आलोचना स्वागतयोग्य है। राजद्रोह पर पुन: बहस चली है। इसका भी स्वागत होना चाहिए। जैसे प्रत्येक मनुष्य को आत्मरक्षा का अधिकार होता है, उसी तरह राष्ट्र राज्य को भी आत्मरक्षा का अधिकार है। कानून की आवश्यकता एवं उपयोगिता का विवेचन जरूरी है। इसी आधार पर दंड विधान से संबंधित राजद्रोह की धारा पर निर्णय लिया जाना चाहिए।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:03-07-23

मणिपुर में दुविधाग्रस्त नजर आ रही मोदी सरकार

शेखर गुप्ता

'भारत में शासन की दृष्टि से सबसे चुनौतीपूर्ण राज्य कौन सा है?' इस प्रश्न का उत्तर आसान है। भारत का नक्शा उठाकर देखिए आपको पता चल जाएगा कि जवाब है मणिपुर।

दो महीने से भी अधिक समय हो चुका है और इस सीमावर्ती राज्य में सशस्त्र समूहों और प्रतिद्वंद्वी भीड़ का शासन चल रहा है जो एक दूसरे के खिलाफ मैदान में हैं। केंद्र की सत्ताधारी पार्टी यानी भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) मणिपुर में भी सत्ता में है। इंदिरा गांधी के दिनों की कांग्रेस की तरह भाजपा भी आला कमान संचालित पार्टी है। क्या उस सर्वशक्तिमान आला कमान का हुक्म मणिपुर में चल पा रहा है? लगता है नहीं।

इंफाल में शुक्रवार को जो तमाशा हुआ उस पर नजर डालिए। नाकाम साबित हुए मुख्यमंत्री एन बीरेन विक्रम सिंह की नजरों के सामने प्रदेश जलता रहा और उन्होंने इतना साहस नहीं दिखाया कि जनजातीय, पहाड़ी जिलों का दौरा ही कर लेते। वह अपनी ही पार्टी के दिग्गज नेता और देश के गृह मंत्री अमित शाह के साथ भी वहां नहीं गए। आखिर में उन्होंने यह बात फैल जाने दी कि वह इस्तीफा दे रहे हैं।

पूरी दुनिया को अपना 'इरादा' पता चल जाने के बाद वह हाथ में इस्तीफा लेकर राजभवन के लिए निकले। इस बीच उनके मैतेई समुदाय की महिलाओं की भारी भीड़ वहां एकत्रित हो गई और उनसे इस्तीफा न देने को कहने लगी। इसी नाटक-नौटंकी के बीच एक महिला ने उनके एक कर्मचारी के हाथ से सिंह का इस्तीफा छीनकर फाड़ दिया। प्रदर्शनकारी महिलाओं द्वारा इस्तीफे को पैरों तले रौंदे जाने के बाद उसकी तस्वीरें सोशल मीडिया पर साझा की गईं। इसके बाद सिंह ने ट्वीट किया कि वह इस्तीफा नहीं दे रहे हैं। यह भी कि जब उनके लोग उन्हें इतना प्यार करते हैं तो वह इस्तीफा कैसे दे सकते हैं? उनके इस्तीफे को छीनने, फाड़ने, रौंदने और फिर वापस लेने की प्रक्रिया सुविचारित तरीके से तैयार किया गया नाटक था। वह पद पर बने रहे। इससे भाजपा आला कमान की प्रभुता के बारे में क्या संदेश निकलता है? अगर पार्टी आला कमान उनका इस्तीफा चाहता था तो उन्होंने भीड़ की शक्ति का इस्तेमाल उस आदेश की अवहेलना करने के लिए किया। अगर ऐसा नहीं था तो क्या उन्होंने पार्टी के शीर्ष नेताओं की अवज्ञा करते हुए इस्तीफा देने की धमकी दी और फिर भीड़ एकत्रित करके अपना शक्ति प्रदर्शन किया? चाहे जो भी हो, इससे पार्टी आला कमान कमजोर नजर आया। मणिपुर की हालत पहले की तरह ही खराब है। वह हिंसा की आग में जल रहा है।

सिंह किसी विचारधारा में प्रशिक्षित नहीं हैं। वह एक फुटबॉल खिलाड़ी थे। वह अच्छे डिफेंडर थे और बीएसएफ ने उन्हें नौकरी दी थी। वह 14 सालों तक वहां काम करते हुए खेलते रहे। वह तथाकथित डेमोक्रेटिक रिवॉल्युशनरी पीपुल्स पार्टी के सह-संस्थापक रहे। 2002 में इस पार्टी से विधायक बने दो नेताओं में एक वह भी थे। इसके तुरंत बाद उन्होंने पार्टी का कांग्रेस में विलय कर दिया।

बाद में जब कांग्रेस केंद्र की सत्ता से हट गई और भाजपा ने अपने लिए प्रतिभा खोज शुरू किया तो उन्होंने आसानी से पाला बदल लिया। उनके लिए विचारधारा कोई मायने नहीं रखती। इस बार उन्होंने हिंसात्मक रूप से बंटे हुए प्रदेश में अपनी जातीय वफादारी का प्रदर्शन किया है। इस दौरान उन्होंने पार्टी के समक्ष एक बड़ा प्रश्न पैदा किया है?

पहला, चूंकि मैतेई मुख्य रूप से हिंदू हैं इसलिए क्या ईसाई जनजाति को नाराज छोड़कर केवल मैतेई समुदाय का समर्थन और वफादारी हासिल करके शांति स्थापना की जा सकती है? जनजातीय समुदाय को इस षडयंत्र सिद्धांत पर विश्वास है। उनका मानना है कि यह प्रांत में हिंदू-ईसाई ध्रुवीकरण की कोशिश है।

दूसरा सवाल यह है कि आखिर वह अपने ही प्रांत में शासन की नाकामी कब तक झेलेंगे? खासतौर पर तब जबकि वे पूर्वोत्तर में अपने दल के उभार को सफलता की कहानी के रूप में पेश करते हैं।

पहचान की राजनीति या कहें हिंदू-मुस्लिम ध्रुवीकरण की राजनीति ने भाजपा को असम और त्रिपुरा में लगातार दो चुनाव जीतने में मदद की है। अरुणाचल प्रदेश और मणिपुर में उसने कांग्रेस के पुराने नेताओं को साथ लेकर सत्ता हासिल की या फिर छोटे दलों के साथ गठजोड़ करके सत्ता में आयी। मेघालय, मिजोरम, नगालैंड और सिक्किम इसके उदाहरण हैं। स्थानीय, क्षेत्रीय स्वायत्तता की मांग पूर्वोत्तर के जनजातीय राज्यों में सघन है लेकिन ये राज्य केंद्र से टकराव लेने की दृ ष्टि से बहुत छोटे हैं।

अब तक यह व्यवस्था कारगर रही है और पार्टी को भी पूर्वोत्तर में शासन करने का अपना ख्वाब पूरा करने का मौका मिला है। एक विचार यह भी था कि यह पूरा इलाका कांग्रेस की स्वार्थी और भ्रष्ट राजनीति के कारण अस्थिरता के दुष्चक्र में घिरा रहा है। पूर्वोत्तर में भाजपा की सफलता भारतीय राजनीति में एक उल्लेखनीय परिघटना थी लेकिन म णिपुर में वह सफलता गंभीर खतरे में नजर आ रही है।

भाजपा ने जहां पूर्वोत्तर की समस्या के लिए कांग्रेस के भ्रष्टाचार और स्वार्थ को जिम्मेदार ठहराया, वहीं उसने दो बातों की अनदेखी कर दी। पहली, कांग्रेस अगर इतनी ही भ्रष्ट थी तो इस इलाके में भाजपा का पूरा नया नेतृत्व कांग्रेस से ही कैसे आया? दूसरा, भाजपा इस भूभाग की जटिलता को भुला बैठी। पूर्वोत्तर के जनजातीय इलाके में हिंदी क्षेत्रों की तरह हिंदू-मुस्लिम या जातीय समीकरण काम नहीं करते। मणिपुर इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। यह वजह है कि शासन की दृष्टि से भी मणिपुर देश का सबसे मुश्किल राज्य है।

मणिपुर में शासन की चुनौती को समझने के लिए आप इतिहास, भूगोल या जनांकिकी से शुरुआत कर सकते हैं। आइए वर्तमान से शुरुआत करते हैं क्योंकि इसमें तीनों कारक शामिल हैं। व्यापक तौर पर देखा जाए तो मणिपुर में तीन जनजातीय समूह हैं: मैतेई, कुकी और नगा।

जरा देखिए तीनों समूह क्या चाहते हैं:

मैतेई अनुसूचित जनजाति का दर्जा चाहते हैं और साथ ही अपने राज्य में राजनीतिक रसूख बरकरार रखना चाहते हैं।

कुकी समुदाय की मांग स्वायत्त क्षेत्र की है। वह एक अर्द्ध राज्य के लिए तैयार है ताकि उसे मैतेई समुदाय के दबदबे वाले प्रशासन के अधीन न रहना पड़े। नगा समुदाय अलगाव चाहता है लेकिन भारत से नहीं केवल मणिपुर से। वह व्यापक नगालैंड या नगालिम से जुड़ना चाहता है।

नैशनल सोशलिस्ट काउंसिल ऑफ नगालैंड के वार्ताकार भी केंद्र से यही चाहते हैं। लब्बोलुआब यह है कि तीनों समूहों में से कोई भारत से अलग होना नहीं चाहता। इसके बावजूद तीनों स्वचालित हथियारों से लैस हैं। अगर सुरक्षा बलों को कुछ हद तक इन्हें रोकने में कामयाबी मिल भी जाए (फिलहाल ऐसी कोई मंशा नहीं दिखती) तो भी इनकी अबाध आपूर्ति जारी रहेगी।

कुकी समुदाय इन्हें सीमा पार म्यांमार से प्राप्त करता है और मैतेई इंफाल घाटी में किसी भी पुलिस हथियारखाने से मनचाहे हथियार ले सकते हैं। वे अक्सर अपने आधार कार्ड भी वहां छोड़ देते हैं मानो कहना चाह रहे हों, 'अगर कोई आपसे पूछे कि यह सब किसने किया तो कहिएगा हम आए थे।' सुरक्षा बलों के लिए सबसे बड़ी चुनौती इस साधारण तथ्य से आती है कि इन समूहों में से कोई अलगाव नहीं चाहता। ऐसे में सेना उन्हें राज्य का शत्रु कैसे माने? उन्हें राष्ट्र विरोधी मानकर उन पर गोलियां कैसे बरसाए? यह एक जटिल प्रश्न है।

हमारे इतिहास में ऐसी दुविधा की स्थिति पहले नहीं आई। दीमापुर में स्थित विद्रोहियों से निपटने में कुशल सैन्य टुकड़ी अब मणिपुर में तैनात है। उनकी मदद के लिए सीआरपीएफ और असम राइफल्स की कुछ बटालियन हैं लेकिन वे लड़ नहीं सकतीं। मणिपुर में किसी समूह को शत्रु घोषित नहीं किया गया है। ऐसे में इन बलों की भूमिका संयुक्त राष्ट्रीय शांति बल जैसी रह गई है। वे सुरक्षित स्थानों को खाली कराते हैं और यह सुनिश्चित कर रहे हैं कि वस्तुओं की आपूर्ति सुचारु रूप से चलती रहे।

वे उन लोगों पर भी गोली नहीं चलाते जो उन्हें हथियार दिखाते हैं, उनके हथियार छीनना तो दूर की बात है। विद्रोह से निपटने के मामले में दुनिया की सबसे सफल और कुशल सेना के लिए यहां के हालात अजीब हैं। यहां उसे वैसी ही जटिलताओं का सामना करना पड़ रहा है जैसी भाजपा को राजनीतिक रूप से झेलनी पड़ रही हैं।

जनसत्ता

Date:03-07-23

मुसीबत बनता प्लास्टिक कचरा

रामानुज पाठक

सिंथेटिक फाइबर की तरह प्लास्टिक भी एक पालीमर है। जब रासायनिक पदार्थों की छोटी-छोटी इकाइयां मिलकर एक बड़ी इकाई बनाती हैं तो उसे पालीमर कहते हैं। ये पालीमर प्राकृतिक भी होते हैं, जैसे- सूत, रेशम आदि और ये कृत्रिम भी होते हैं, जैसे सिंथेटिक फाइबर यानी नायलान, पालिस्टर, रेयान, एक्रेलिक आदि। प्रकृति के आधार पर प्लास्टिक दो प्रकार के होते हैं- थर्मोप्लास्टिक और थर्मोसेटिंग प्लास्टिक। जहां थर्मोप्लास्टिक गर्म होने पर आसानी से अपना आकार बदल लेते हैं, वहीं थर्मोसेटिंग प्लास्टिक गर्म होने के बाद भी अपना आकार नहीं बदलते। पालीथिन और पीवीसी थर्मोप्लास्टिक के उदाहरण हैं, जिनका प्रयोग खिलौनों और विभिन्न प्रकार के डिब्बे बनाने में किया जाता है। बेकेलाइट और मेलामाइन थर्मोसेटिंग प्लास्टिक के उदाहरण हैं, जिनका प्रयोग बिजली के सामान बनाने में किया जाता है। चूंकि प्लास्टिक जल और हवा के साथ प्रतिक्रिया नहीं करता और भार में हल्का, मजबूत, टिकाऊ और धातु की अपेक्षा सस्ता होता है, इसका उद्योग और घरेलू सामान बनाने में काफी प्रयोग होता है।

भले प्लास्टिक के कई अहम उपयोग हैं, लेकिन एकल उपयोगी यानी सिंगल यूज प्लास्टिक पर हमारी निर्भरता बढ़ती ही जा रही है। इसके चलते पर्यावरण संबंधी गंभीर समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। इस प्लास्टिक का निस्तारण बड़ी समस्या है। गौरतलब है कि जो पदार्थ बैक्टीरिया आदि की क्रियाओं से अपघटित होते हैं, वे बायोडिग्रेडेबल यानी गलनीय कहलाते हैं। जो इन क्रियाओं से अपघटित नहीं होते वे 'नान- बायोडिग्रेडेबल' यानी अगलनीय कहलाते हैं, उनमें प्लास्टिक भी आता है। अध्ययन बताते हैं कि प्लास्टिक को पूरी तरह अपघटित होने में सौ से पांच सौ साल तक लग जाते हैं। इसके अलावा, इन सिंथेटिक पदार्थों के जलने की प्रक्रिया काफी धीमी होती है और ये आसानी से पूरी तरह जलते भी नहीं हैं। जलाने की प्रक्रिया में ये वातावरण में काफी विषैला धुआं भी छोड़ते हैं, जो वायु प्रदूषण का कारण बनता है। कचरे में फेंका हुआ प्लास्टिक हमारे प्राकृतिक स्थलीय, स्वच्छ जल और समुद्री आवासों को प्रदूषित करता है।

हालांकि समुद्र के नितल या सी-बेड पर थोड़ी मात्रा में ही प्लास्टिक कचरा पाया जाता है, लेकिन चिंता की बात यह है कि गहरे समुद्र में सूर्य का प्रकाश न पहुंचने और कम तापमान होने के कारण इनकी गलन दर बहुत कम है। वहीं, हल्के प्लास्टिक अपनी उत्प्लावी प्रकृति के कारण समुद्र की सतह पर बने रहते और समुद्री धाराओं की मदद से समुद्र में प्लास्टिक के 'गेयर' बनाते हैं। एक बार गेयर के अंदर प्लास्टिक के आ जाने के बाद ये तब तक उससे बाहर नहीं निकल

पाते, जब तक कि सूर्य की किरणें उन्हें माइक्रोप्लास्टिक में न बदल दें। आजकल माइक्रोप्लास्टिक भी वैज्ञानिकों के लिए चिंता का विषय बनते जा रहे हैं।

समुद्री प्लास्टिक कचरे का सबसे चिंताजनक पहलू है कछुआ, मछली, सी-बर्डस, मैमल्स और अकशेरुकी जीवों द्वारा प्लास्टिक के इन कचरों को भोजन समझ कर खा लेना। ये प्लास्टिक उनके शरीर में जाकर जैव-संचयन या बायो एक्युमुलेशन का कारण बनते हैं। जैव-संचयन के तहत, अगलनीय प्रदूषक किसी पारितंत्र की खाद्य शृंखला में विभिन्न पोषण स्तरों से गुजरते हैं। चूंकि इन प्रदूषकों का जीवों के भीतर उपापचय नहीं हो पाता, इसलिए जीव में उनका सांद्रण बढ़ता जाता है। इन प्लास्टिकों से रिसने वाले खतरनाक रसायनों के कारण या फिर पाचनतंत्र में प्लास्टिक के फंस जाने से इन जीवों की मृत्यु तक हो जाती है। इससे इनकी प्रजनन क्षमता में कमी आ जाती है।

प्लास्टिक प्रदूषण न सिर्फ समुद्र, बल्कि ताजा जल निकायों, भूमि, जानवरों और मनुष्यों को भी बड़े पैमाने पर प्रभावित करता है। मिट्टी में मिलकर प्लास्टिक खनिज, जल और पोषक तत्त्वों के अवशोषण में बाधा पहुंचाता और इसकी उर्वरता को कम करता है। कचरे के ढलाव में डाले गए प्लास्टिक, जल के साथ प्रतिक्रिया कर खतरनाक रसायन बनाते और भूजल की गुणवत्ता को खराब कर देते हैं। प्लास्टिक में पाए जाने वाले जहरीले रसायन, जैसे स्टाइरीन ट्रिमर, बिसफेनाल ए और पाली स्टायरेन में पाया जाने वाला बेंजीन हमारे पीने योग्य पानी की गुणवत्ता को खराब कर रहे हैं।

संयुक्त राष्ट्र के मुताबिक हर वर्ष चालीस लाख टन प्लास्टिक का उत्पादन विश्व भर में होता है, पर केवल दस फीसद का पुनर्चक्रण होता है। प्लास्टिक के कुल उत्पादन का आधे से अधिक भाग एकल उपयोगी प्लास्टिक है। 1.9 से 2.3 लाख टन प्लास्टिक कचरा हर साल तालाबों, नदियों और समुद्र में फेंक दिया जाता है। स्थिति की इस गंभीरता को समझते हुए पिछले साल प्रधानमंत्री ने लोगों से प्लास्टिक प्रदूषण रोकने की अपील की थी। इसमें 2022 तक भारत से हर तरह के एकल उपयोगी प्लास्टिक को हटाने की प्रतिज्ञा भी की गई थी। मगर प्रतिबंध के बावजूद विकल्पहीनता के कारण यह धड़ल्ले से उपयोग हो रहा है।

केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड और ठोस कचरा प्रबंधन कानून, 2016 के अनुसार, सूखे कचरे यानी प्लास्टिक, कागज, धातु, कांच और गीले यानी रसोई और बगीचे के कचरे को उनके स्रोत पर ही अलग करना होगा। लगभग बीस राज्यों ने प्लास्टिक के किसी न किसी रूप को प्रतिबंधित किया हुआ है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी एकल उपयोगी प्लास्टिक मुक्त विश्व बनाने हेतु अनेकानेक प्रयास किए जा रहे हैं। साल भर पहले नैरोबी में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण परिसंघ में दो सौ से ज्यादा देशों ने समुद्रों से प्लास्टिक प्रदूषण हटाने के लिए एक संकल्प पारित किया था। हालांकि यह कानूनी रूप से बाध्यकारी संधि नहीं है, लेकिन आगे का रास्ता तय करने में मददगार साबित होगी। यह संकल्प, यूएनईपी घोषणा का ही एक भाग है, जो कचरे में कमी लाने, प्रदूषण के खिलाफ कड़े नियम बनाने और जीवन-शैली के लिए नुकसान की भरपाई करने की बात करता है। कुछ समय पहले चिली, ओमान, श्रीलंका और दक्षिण अफ्रीका ने भी 'क्लीन सीज कैंपेन' नामक एक अभियान को शुरू किया।

देखने की बात है कि चर्चा में रहे ये सारे कदम प्लास्टिक से होने वाले नुकसान को रोकने में कितने असरदार हो पाते हैं। प्लास्टिक कचरे में तत्काल कमी लाने के लिए जरूरी है कि कचरे का बेहतर तरीके से निपटान और उसका प्रबंधन किया जाए। कचरे के प्रबंधन के लिए 'रिड्यूस, रीयूज और रीसायकल' के सिद्धांत को अमल में लाने की जरूरत है। पुनर्चक्रण

प्रक्रिया में निजी क्षेत्रों की भागीदारी बढ़ाने के साथ-साथ स्थानीय स्तर पर भी इस दिशा में काम करने की जरूरत है। प्लास्टिक के निर्माण से लेकर कचरे के प्रबंधन तक के विभिन्न चरणों में प्रभावी नीतियों को अपनाना बहुत जरूरी है।

हमारी अर्थव्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण भाग बन चुके इस सर्वव्यापी पदार्थ को बनाने और इस्तेमाल करने के तरीके पर जल्द ही दुबारा सोचने की जरूरत है, क्योंकि 'लेना-बनाना-फेंकना' वाली व्यवस्था को त्यागना ही होगा। एकल उपयोगी प्लास्टिक को व्यक्तिगत संकल्प लेकर त्यागा जा सकता है, अन्यथा जिस प्लास्टिक ने मानव जीवन को खुशी और आनंद दिया है वही इंसानों और अन्य जीवों को इस पृथ्वी से सदा के लिए खत्म कर देगा।

राष्ट्रीय सहारा

Date:03-07-23

बैंकों को मुनाफा

संपादकीय

सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों (PSB) का मुनाफा 2022-23 में बढ़कर 1.04 लाख करोड़ रुपये हो गया जो 2014 के 36,270 लाख करोड़ रुपये की तुलना में तीन गुना है। वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने शनिवार पंजाब एंड सिंध बैंक के कॉरपोरेट कार्यालय के उद्घाटन अवसर पर कहा कि सरकार की नीतियों के कारण पीएसबी के मुनाफे में वृद्धि दर्ज की गई है। बेशक, बैंकिंग सेक्टर के लिहाज से यह उत्साहजनक आंकड़ा है, लेकिन इसे लेकर सरकार और बैंकों को आराम से बैठकर जश्न नहीं मनाना चाहिए। बैंकिंग क्षेत्र में हाल के समय, बल्कि कहें कि काफी समय से जब-तब कर्मचारियों में असंतोष देखने को मिला है। बैंकों के परस्पर विलयन पर उन्होंने असंतोष जताया तो जब-तब बैंकों के निजीकरण जैसी खबरों पर भी विरोध मुखर किया है। कई बार लगता है कि जैसे बैंकिंग क्षेत्र में कार्यरत लोगों और सरकार के बीच कम्युनिकेशन गैप है। इससे उत्पादकता यकीनन प्रभावित होती है। इसलिए जरूरी है कि बैंककर्मियों और सरकार के बीच परस्पर विश्वास मजबूत किया जाए। बैंक तंत्र के स्तर पर सवरेत्तम कॉरपोरेट प्रशासन नियमन, नियामक मानदंडों के अनुपालन, विवेकपूर्ण तरलता प्रबंधन, मजबूत परिसंपत्ति-देयता और जोखिम प्रबंधन पर ध्यान देना जारी रहना जरूरी है। बैंकों की कार्यसंस्कृति पर भी ध्यान दिया जाना जरूरी है। सरकारी बैंकिंग तंत्र को गौर करना होगा कि आखिर, क्या कारण हैं कि ग्राहक निजी बैंकों को सरकारी बैंकों के बरक्स तरजीह देने लगे हैं। अच्छी बात है कि अर्थव्यवस्था में बैंकों और कॉरपोरेट की 'ट्विन-बैलेंस शीट' की समस्या दूर हो गई है। सरकार के ठोस प्रयासों से यह संभव हो सका है और 'ट्विन-बैलेंस शीट' का लाभ मिल रहा है। 'ट्विन-बैलेंस शीट' की समस्या का अर्थ है कि एक ही समय में बैंकों और कॉरपोरेट की वित्तीय सेहत में गिरावट देखने को मिलती है। ऐसी स्थिति में कर्ज देने वाले और कर्ज लेने वाले, दोनों की चिंता बढ़ जाती है। इस कारण दोनों ही पक्षों में अनावश्यक तनाव पैदा हो जाता है, और डूबत ऋण की आशंका उठ खड़ी होती है। यदि कर्ज लेने वाला इसे चुकाने की स्थिति में हो तो वह स्वत: ही 'ट्विन-बैलेंस शीट' से लाभान्वित होता है। बहरहाल, सरकार ने बैंकिंग क्षेत्र के लिए तमाम पहल की हैं, जिनका फायसा बैंकिंग क्षेत्र को मिल रहा है। इस कारण सार्वजनिक

क्षेत्र के बैंकों के प्रदर्शन में सुधार देखने को मिला है और बैंक अर्थव्यवस्था की बेहतरी में योगदान देने में पहले से ज्यादा सबल हुए हैं।

Date:03-07-23

चेती सरकार

संपादकीय

सिकल सेल एनीमिया गंभीर आनुवांशिक रोग है, जिसके दुनिया भर के आधे मरीज भारत में हैं। राष्ट्रीय सिकल सेल एनीमिया उन्मूलन मिशन, 2047 की शुरुआत प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने की। इस पोर्टल की शुरुआत करते हुए उन्होंने कहा-यह अभियान अमृतकाल का प्रमुख मिशन बनेगा। जब देश आजादी के सौ साल मनाएगा, तब तक हम मिलकर मिशन मोड में अभियान चलाकर इससे आदिवासियों और देश को मुक्ति दिलाएंगे। मोदी ने कहा, आदिवासी समाज की इस सबसे बड़ी चुनौती को हल करने का बीड़ा हमारी सरकार ने अब उठाया है। आदिवासी हमारे लिए सरकारी आंकड़ा भर नहीं हैं। उन्होंने कहा, यह हमारे लिए संवेदनशीलता और भावना का विषय है। सिकल सेल एनीमिया रक्तसंबंधी आनुवांशिक बीमारी है जो माता-पिता से बच्चों में आती है। यह दोषपूर्ण हीमोग्लोबिन से संबंधित होती है। इसमें ऊतकों तक ऑक्सीजनयुक्त रक्त प्रवाह बाधित हो जाता है जिससे कोशिकाएं आपस में चिपक जाती हैं। रक्तवाहिकाओं की समस्या के साथ एनीमिया, पीलिया, स्ट्रोक जैसी बीमारियों के जोखिम भी बढ़ जाते हैं। इस कारण अमूमन मरीज चालीस वर्ष तक ही जीवित रह पाता है। वैज्ञानिक लगातार सिकल सेल के जीन पर शोध कर रहे हैं जिससे कि असामान्य जीन को बदल कर इसका बेहतर इलाज किया जा सके। अपने यहां सत्रह राज्यों के सात करोड़ से ज्यादा आदिवासी सिकल सेल एनीमिया से पीड़ित हैं। इस गंभीर बीमारी के जोखिमों को ध्यान रखते हुए वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने 2023 के बजट भाषण के दौरान इस बीमारी को भारत से जड़ से खत्म करने का लक्ष्य निर्धारित किया था। देश के विभिन्न इलाकों में बेहतर चिकित्सा और अनुभवी चिकित्सकों के अभाव में मरीजों को समय रहते उचित इलाज नहीं मिल पाता। ना ही इस तरह की आनुवांशिक बीमारियों से बचाव के विषय में सार्वजनिक तौर पर कभी कोई चर्चा ही की जाती थी। अशिक्षा, अज्ञान और आर्थिक कारणों से साधारण जनता को इन वंशानुगत रोगों के प्रति अनभिज्ञता बनी रहती है जिसका लाभ उठाने वाले ओझा-तांत्रिक, ढोंगी, झाड़-फूंक करने वाले इन्हें बेवजह भयभीत करते रहे हैं। किसी भी विकासशील और सेहतमंद समाज के लिए जरूरी है कि उसे बेहतर स्वास्थ्य सेवाएं मुहैया कराई जाएं और यह जिम्मेदारी सीधे तौर पर सरकार की है। देर से ही सही, सरकार ने सुध तो ली।

Date:03-07-23

उत्पादक पस्त, जमाखोर मस्त

रवि शंकर

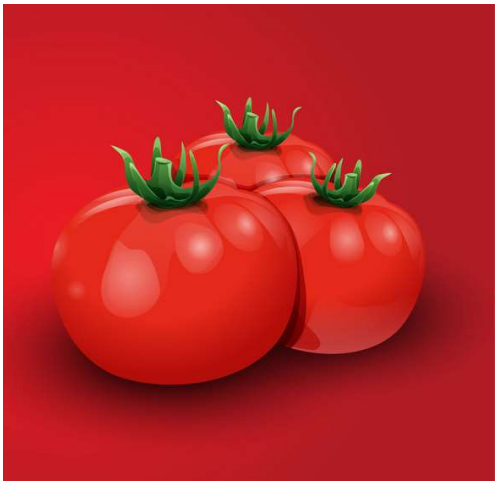

कुछ माह पहले किसानों ने दाम न मिलने से जिस टमाटर को सड़क पर फेंका था, अब उसके दामों में सबसे ज्यादा उछाल देखने को मिल रहे हैं। यू कहें कि पिछले कुछ दिनों से टमाटर के दाम आसमान छू रहे हैं जिससे देश के विभिन्न क्षेत्रों के बाजारों में टमाटर लाल हो चला है। टमाटर महंगे होने की वजह से लोग लाल-पीले हो रहे हैं। तीस से 40 रुपये किलो बिकने वाला टमाटर 100-120 रुपये प्रति किलो तक पहुंच गया है।

मौजूदा समय में दिल्ली ही नहीं, देश के अन्य भागों में भी उपभोक्ता टमाटर की बढ़ी कीमतों से प्रभावित हैं। थोक और खुदरा कारोबारी आवक में भारी कमी का हवाला देकर टमाटर के दाम बढ़ा रहे हैं, जबकि मंडियों से प्राप्त आवक के आंकड़े कारोबारियों के इस तर्क से पूरी तरह मेल नहीं खाते। एकाएक कीमतों में वृद्धि के लिए उत्तर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में भारी वष्रा, जिससे फसल को नुकसान हुआ है, को जिम्मेदार ठहराया गया है। हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड में बारिश से फसल प्रभावित हुई है और इसकी आपूर्ति भी मांग की तुलना में कम हो गई है। हालांकि उम्मीद की जा रही है कि कुछ राज्यों में अगले एक दो महीनों में जब टमाटर और अन्य सब्जियों की नई खेप की आवक बढ़ेंगी तो कीमतों में राहत मिलेगी। इस बीच सरकार ने कहा है कि कीमतों में उछाल अस्थायी और मौसमी है। आज की तारीख में स्थिति यह है कि मानसून आते ही मुनाफाखोरों की वजह से सब्जी के दाम आसमान छूने लगे हैं। फुटकर में टमाटर ही नहीं, बल्कि सब्जियों के दाम चार गुना बढ़ गए हैं। कीमतों में अचानक उछाल की अहम वजह हरियाणा, यूपी और दक्षिण भारत के कई राज्यों में फसल बर्बाद होना बताया जा रहा है। हालांकि टमाटर के भाव देख कर केंद्र सरकार अलर्ट हो गई है। महंगाई की इस मार से ग्राहक और दुकानदार, दोनों परेशान हैं जबकि इस समय तक अमूमन सब्जियां महंगी नहीं मिलतीं।

आखिर, सरकार रिटेल कारोबारियों के खिलाफ कुछ भी करने में असमर्थ क्यों नजर आ रही है? देश भर में नगदी फसलों के रूप में सब्जियां किसानों के लिए बड़ा सहारा हैं, लेकिन विभिन्न कारणों से उन्हें अक्सर घाटा ही उठना पड़ता है। यूपी, पंजाब, मध्य प्रदेश से लेकर महाराष्ट्र तक के किसान घाटे के शिकार हुए हैं। गौरतलब है कि किसानों से आधी कीमत पर सब्जी खरीद कर मनमानी रेट पर मुनाफाखोर व्यापारी बेच रहे हैं। किसान लुट जाता है क्योंकि उसके पास सब्जी रखने के लिए कोल्डस्टोरेज नहीं हैं। दाम उछलने से सबसे ज्यादा मध्यमवर्गीय और गरीब उपभोक्ता प्रभावित हो रहे हैं। वैसे भी भारत की अर्थव्यवस्था सटोरियों और बिचौलियों के हाथों में ही रही है। उनके कारण जमाखोरी बढ़ रही है। रिटेल बाजार में खाद्य पदाथरे के दाम चाहे कुछ भी क्यों न बढ़ जाएं, किसान को इसका फायदा कदाचित ही पहुंचता हो। पूरा हिस्सा बिचौलिए और रिटेलर खा जाते हैं। न तो किसान को कुछ मिल पाता है, और न ही उपभोक्ता को। इतना ही नहीं, धीरे-धीरे किसान के हाथ से उसकी जमीन भी छिनती जा रही है। इसे कृषि प्रधान देश का उपनाम बेमानी लगने लगा है। वैसे अर्थशास्त्रियों की दलील हमेशा भ्रम पैदा करती है, जीडीपी का हवाला देकर ऐसा हो-हल्ला मचाते हैं कि लगता है कि देश एक झटके से विकास के शिखर पर पहुंच गया है।

देश की सियासत में गरीबी हटाने की बात मजबूत और असरदार टूल साबित हुई है। गरीबी हटाओ नारा इंदिरा गांधी की राजनीति का ब्रह्मास्त्र रहा और हाल फिलहाल प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी भी किसी न किसी रूप में इसका जिक्र करते रहे हैं। बहरहाल, किसान की सबसे बड़ी समस्या कर्ज नहीं है। अधिक उत्पादन उत्पादों का उचित मूल्य न मिल पाना, भंडारण और मंडियों तक पहुंच की पर्याप्त सुविधाओं का अभाव, बाजार जोखिम और वैकल्पिक आजीविका न होना भी

बड़े कारणं हैं, जिनके लिए केंद्र और राज्य सरकारों को मिलकर प्रभावी नीति बनाने की दरकार है। ऐसे में केंद्र और राज्य सरकारों को किसानों की स्थायी समस्या के निदान के लिए ठोस एवं कारगर नीति बनानी चाहिए ताकि देश के अन्नदाता आत्महत्या करने के लिए मजबूर नहीं हों। ऐसा नहीं हुआ तो किसानों की नाराजगी बीजेपी के मिशन 2024 में पार्टी के लिए बड़ी चुनौती के रूप में सामने आ सकती है।

हालांकि कहना मुश्किल है कि महंगाई की मार झेल रहे भारत का ऐसी सामाजिक-राजनीतिक बाधाओं से कुछ लेना-देना है या नहीं। कुल मिलाकर महंगाई ने आमजन को अपने सोच में बदलाव लाने पर मजबूर कर दिया है। छोटी-मोटी नौकरियां कर रहे लोगों के कई शौक तो महज सपने भर रह गए हैं। हर कदम पर लोगों को हालात से समझौता करना पड़ता है। सच्चाई यह है कि पिछले दो दशकों में ऊंची वृद्धि दर के साथ ऊंची महंगाई दर ने लोगों के मुंह से निवाला छीन लिया है। इस दौरान गरीबों की आय में जो मामूली वृद्धि हुई, वह भी ऊंची महंगाई ने लील ली। बेशक, आमजन के लिए मंहगाई सचमुच बड़ा मुद्दा है।